एक शिक्षार्थी इन किताबों के बारे में क्या सोचता है?
यह अनुभव इन किताबों से पढ़कर निकले शिक्षार्थी का है।

इन किताबों को पढ़ते हुए...

फवाज़ शाहीन

एनसीईआरटी की किताबों में मौजूद कार्टूनों पर चल रही इस तवील बहस और विवाद को देखकर मुझे वोह वक्त याद आया जब मैंने पहली बार यह किताबें देखी थीं।

ये 2006 की बात है, जब मैं 9वीं कक्षा में आया था। ये किताबें उसी साल से शुरू की गई थीं। मुझे अच्छी तरह याद है कि अपनी नवीं की राजनीति विज्ञान की किताब को देखकर मेरी प्रतिक्रिया क्या थी। पूरी रात मैं बैठकर अलग-अलग कार्टून और तसवीरें देखता रहा और उनसे मुताल्लिक मुद्दों पर अपने वालिद साहब से पूछता रहा और कई दिनों तक हमारे घर में उन पर चर्चा होती रही। मुझे नहीं याद कि इससे पहले कभी किसी स्कूल की किताब ने इस तरह से मुझे अपने मजमून से जोड़ा था और उसमें दिलचस्पी लेने को मजबूर किया था। इस की वजह शायद यही है कि इस किताब की पूरी डिजायन इस तरह की है जो कि फकत ज्ञान देने की नहीं बल्कि मुकम्मल तौर पर हमें शामिल करके उस पर सोचने की कवायद शुरू करने पर ध्यान देता है।

मैं इन किताबों से इतना प्रभावित था की विज्ञान का तालिब-इल्म होने के बावुजूद मैंने एनसीईआरटी की 12वीं और 11वीं की राजनीति की किताबें लीं। मेरा जाती ख्याल ये है कि ये किताबें आजादी के बाद हिंदुस्तान के सामने आने वाले बड़े सवालों की पहचान करने की एक अच्छी कोशिश करती हैं और हर जगह कोशिश इस बात की लगती है कि सवाल बताए नहीं बल्कि उठाए जाएं। इसके लिए जरूरी है कि हम उस वक्त की अलग-अलग सोच को समझने की कोशिश करें। इस मकसद को पूरा करने के लिए अखबार में आने वाले कार्टून हमेशा ही बहुत काम आते हैं और इसी बात को समझना जरूरी है कि ये किताबें तो सिर्फ अलग-अलग सियासी सवालों पर मौजूद मुख्तलिफ सोच और नजरियों को समझने की ताकत पैदा करना चाहती हैं।

इस का सियासी रंग तो अलग बात हुई, असल में यहां बात सिर्फ कार्टून या तस्वीरों की नहीं है, बात है हमारी तालीम को लेकर पूरे नजरिए की। इन नजरियों पर पूरे निबंध लिखे जा सकते हैं, मगर मेरे हिसाब से इस पूरी बहस को एक सवाल में समेटा जा सकता है: क्या हम अपने छात्राओं/छात्रों को अच्छे नागरिक बनाना चाहते हैं जो सवाल करें या फकत ऐसे फर्मांबरदार शहरी बनें जो वोट तो डालें मगर नागरिक होने में हिस्सा न लें?

थोराट समिति ने जिस हिसाब से और जिन वुजुहात कर कार्टूनों को हटाया है, उससे तो यही समझ आता है कि वोह चाहते ही नहीं कि तालिब इल्म किसी मुद्दे पर मुश्किल सवाल पूछना शुरू करें और ऐसा ही रहा तो फिर तो बहुत जल्द अर्थशास्त्र की किताबों को भी हटा देना चाहिए क्यूं कि वोह भूमंडलीकरण और विकास की विचारधारा पर लगातार सवाल उठाती हैं और इतिहास की किताब भी क्यूं कि वोह तो सत्याग्रह पर भी सवाल करती है और इतना ही खतरा है तो हमें अखबार और दूसरी किताबें भी पढ़ने की इजाजत नहीं होनी चाहिए।

मैं ज्यादा तो नहीं जानता, मगर इतना जरूर बताना चाहूंगा कि अमेरिकी सियासत पर जो कार्टून थोराट समिति ने हटाने की सिफारिश की है, वोह मुझे हर बार याद आता है जब भी मैं सियासत में पैसे की ताकत का जोर देखता हूं। कई बातें जो कहने से पूरी तरह समझ नहीं आतीं, उन्हें मजाक से समझना बहुत आसान हो जाता है।

अब मेरी इच्छा तो यही है कि जब ये किताबें दोबारा संशोधित हों तो इनमें कार्टूनों पर हुई इस लम्बी बहस पर भी चर्चा हो। आखिर शिक्षार्थियों से कुछ भी छुपाकर क्यों रखा जाए? ◆